

## सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रियाएँ (Processes of Social Change)

पिछले पृष्ठों में हमने इस तथ्य को प्रस्तुत किया है कि सामाजिक परिवर्तन एक प्रक्रिया है। इसका सीधा अर्थ यह है कि सामाजिक परिवर्तन कभी समाप्त नहीं होता। इसमें निरन्तरता होती है। टी.बी. बोटेमोर ने सामाजिक परिवर्तन की मोटी-मोटी प्रक्रियाओं का उल्लेख अपनी पुस्तक सोशियोलोजी (Sociology) में किया है। उन्होंने सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रियाओं को ऐतिहासिक दृष्टि से देखा है। वे कहते हैं कि शुरू से ही समाजशास्त्र का सम्बन्ध इतिहास के दर्शन और यूरोपीय समाजों में होने वाले तीव्रतम तथा हिंसात्मक परिवर्तन से जुड़ा रहा है। देखा जाये तो 18वीं और 19वीं शताब्दियों में यूरोप में जो सामाजिक और राजनीतिक क्रान्तियाँ हुईं, उनका विश्लेषण स्कॉटलैण्ड के इतिहासकारों (फर्ग्युसन, रोबर्टसन), फ्रांस के दार्शनिकों (वोल्टेर, टरगोट) और जर्मनी के इतिहासकारों (हेरडर, हीगेल) आदि ने इतिहास के सामान्य सिद्धान्त में सामाजिक परिवर्तन की विभिन्न प्रक्रियाओं की विशद् व्याख्या की है। इन दार्शनिकों और इतिहासकारों का प्रभाव सेण्ट साइमन (Saint Simon), बकल (Buckle), कॉम्टे (Comte), मार्क्स (Marx), एच. स्पेन्सर (H. Spencer) की कृतियों में देखने मिलता है। मार्क्स और स्पेन्सर के अतिरिक्त दुर्खीम आदि ने भी सामाजिक परिवर्तन की विविध प्रक्रियाओं का उल्लेख किया है।

सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रियाओं में यानी सामाजिक प्रक्रिया किन आयामों से गुजरती है, इसका उल्लेख इन सभी समाजशास्त्रियों ने किया है। मुख्यतया ये सामाजिक प्रक्रियाएँ पाँच हैं—(1) उद्विकास, (2) विकास, (3) प्रगति, (4) सुधार, तथा (5) क्रान्ति।

### उद्विकास (Evolution)

उद्विकास की अवधारणा का सीधा सम्बन्ध जैवकीय उद्विकास से है। 19वीं शताब्दी के समाजशास्त्रियों ने उद्विकास की अवधारणा का प्रयोग बहुत अधिक किया है। यह सब होते हुए भी इन लेखकों ने उद्विकास में निहित अर्थ को कोई अधिक स्पष्ट नहीं किया है। इस शताब्दी में प्राणिशास्त्री डार्विन का प्रभाव प्राकृतिक विज्ञानों के अतिरिक्त समाज वैज्ञानिकों पर भी बहुत अधिक था। इन उद्विकासवादी प्राणिशास्त्रियों ने यह स्थापित किया कि मनुष्य का उद्विकास जीवाश्म (Homosapiens) से हुआ है। ये जीवधारी पानी में निवास करते थे फिर भी जमीन पर आये, इसके बाद पेड़ों पर। पेड़ों पर रहने वाले ये वानर गुफाओं में मिले और इस तरह सिलसिले से लाखों वर्षों में चलकर मानव आया। डार्विन ने यह भी स्थापित किया कि वंशानुक्रमण की प्रक्रिया में मनुष्य के शारीरिक लक्षणों में आधे से थोड़े कम लक्षण अपने माता-पिता से मिलते हैं, आधे से थोड़े अधिक लक्षण दादा, परदादा आदि से मिलते हैं। इस प्राणिशास्त्रीय उद्विकास का प्रभाव कॉम्टे, मार्क्स, स्पेन्सर और दुर्खीम पर भी पड़ा। सामाजिक उद्विकास को समाज वैज्ञानिकों ने सामाजिक डार्विनवाद (Social Darwinism)

का नाम दिया। सामाजिक डार्विनवादियों में वेस्टरमार्क की द हिस्ट्री ऑफ ह्युमन मेरिज (The History of Human Marriage) अग्रणी है। इस पुस्तक के तीन खण्ड हैं और इनमें वेस्टरमार्क ने विवाह के उद्विकास को क्रमबद्ध रूप से रखा है।

जिस तरह विभिन्न प्राणियों का उद्विकास हुआ, कुछ इसी तरह स्पेन्सर ने कहा कि सामाजिक संस्थाओं का उद्विकास भी हुआ है। स्पेन्सर ने अपनी पुस्तक सामाजिक स्थैतिक (Social Statics, 1850) में विस्तारपूर्वक समाज को एक सावयव की तरह उसे उद्विकासीय रूप में रखा है। उन्होंने उद्विकास का तात्पर्य संशोधन के साथ वंश की व्याख्या के रूप में किया है। सामाजिक डार्विनवाद की परम्परा में टाइलर (Primitive Culture, 1871) ने भी उद्विकास की अवधारणा का प्रयोग किया है।

हाल में उद्विकासवादियों ने जो कार्य किया है, उसमें वे प्राणिशास्त्रीय सिद्धान्त तथा विभिन्न सामाजिक उद्विकास सिद्धान्तों के अन्तर को स्पष्ट करते हैं। ऑगबर्न (Ogburn) यद्यपि पूरी तरह से सामाजिक उद्विकास से सहमत नहीं हैं, फिर भी वे कहते हैं कि इस सिद्धान्त ने सामाजिक संस्थाओं के गहन अध्ययन में सहायता दी है। इस पीढ़ी के समाजशास्त्रियों ने यह तो स्वीकार किया है कि प्राणिशास्त्रीय उद्विकास और सामाजिक उद्विकास की धारणा में अभाव तो बहुत है, फिर भी सामाजिक संस्थाओं के सम्बन्ध में हमारी सोच ताकतवर अवश्य बनती है।

उद्विकासीय समाजशास्त्रियों ने विभिन्न सामाजिक संस्थाओं के बारे में विशद् अध्ययन प्रस्तुत किये हैं। उनके दृष्टिकोण और उपागम में अन्तर होते हुए भी उद्विकास की अवधारणा के कुछ निश्चित लक्षण हैं, जो समान रूप से पाये जाते हैं :

1. समाज बराबर लम्बवत् नीचे से ऊपर के स्तर की ओर बढ़ता है।
2. नीचे के स्तर पर भी सामाजिक संरचना सरल और सजातीय (Homogeneous) होती है।
3. जैसे-जैसे समाज ऊपर के स्तर की ओर बढ़ता है, सामाजिक संरचना की जटिलता और उसकी विजातीयता (Heterogeneity) भी बढ़ती जाती है।
4. स्पेन्सर के अनुसार जैवकीय विकास का सिद्धान्त भी सभी तरह के विकास पर लागू होता है।
5. नीचे के स्तर से ऊपर की ओर बढ़ने के पीछे स्पेन्सर के अनुसार जनसंख्या की वृद्धि और सामाजिक स्तरीकरण, ये दो कारक प्रमुख हैं।

निश्चित रूप से उद्विकास की अवधारणा में सामाजिक परिवर्तन निहित है। उद्विकास की बहुत बड़ी विशेषता यह है कि इसमें परिवर्तन बहुत धीरे-धीरे होता है। परिवर्तन की गति इतनी मंद होती है कि सामान्यतया इसकी अनुभूति व्यक्ति में नहीं हो पाती। एक और विशेषता उद्विकास की यह है कि इसमें सामाजिक उद्विकास का अध्ययन, चाहे परिवार हो या विवाह, प्राणिशास्त्रीय उद्विकास के साथ जुड़ा हुआ है। सामान्य सामाजिक परिवर्तन में इस प्रकार की कोई विशेषता नहीं होती। इसी अर्थ में सामाजिक उद्विकास, सामाजिक परिवर्तन से भिन्न है। इस भाँति सामाजिक उद्विकास वह सामाजिक परिवर्तन है जो प्राणिशास्त्रीय उद्विकास से जुड़ा है और जिसकी गति बहुत धीमी होती है।

## विकास (Development)

जिस भाँति सामाजिक उद्विकास की अवधारणा बहुत अधिक स्पष्ट नहीं है, ठीक इसी तरह विकास की अवधारणा भी अस्पष्ट है। बोटोपोर ने विकास के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा है कि इसके माध्यम से हम वस्तुओं को पूरी तरह से विकसित अवस्था की ओर ले जाते हैं। यहाँ इस अर्थ में भी कठिनाई है। विकास से हमारा क्या तात्पर्य है? कुछ लोग जिसे विकास कहते हैं, दूसरों की दृष्टि में शायद वह पतन है। दुनियाभर में विकास की अवधारणा के अर्थ को लेकर एक बहुत बड़ा विवाद चल रहा है। आज तकनीकी विकास के युग में बड़े-बड़े बाँध बनाये जा रहे हैं, पहाड़ों को भेद कर बड़ी-बड़ी टनेल बनायी जा रही हैं, गहरे समुद्र से मछलियाँ पकड़ी जाती हैं, और ऐसे ही अगणित कार्य विकास के नाम पर किये जा रहे हैं। सरकारें भी इसे विकास के नाम से पुकारती हैं। लेकिन दूसरी ओर पर्यावरणवादी हैं जो तथाकथित विकास को केवल पतन या प्रदूषण मानते हैं। महत्वपूर्ण बात यह है कि विकास के साथ में समाज के मूल्य जुड़े होते हैं। यदि कोई परिवर्तन समाज द्वारा निर्धारित लक्ष्यों, मूल्यों या मानदण्डों द्वारा होता है तो इसे विकास कहते हैं। हाल में जो अनुसंधान साहित्य समाजशास्त्र में आ रहा है, उसमें विकास का तात्पर्य औद्योगीकरण, पूँजीवादी, नगरीकरण, आदि से लिया जाता है। इस अर्थ में समाजशास्त्री दुनियाभर में समाजों को दो श्रेणियों में बांटते हैं। एक श्रेणी में वे समाज हैं जो औद्योगिक दृष्टि से बहुत अधिक विकसित हैं, इनमें यूरोप और अमेरिका के देश सम्मिलित हैं, दूसरी ओर समाजों की वह श्रेणी है ज्यो प्रायः ग्रामीण और कृषि प्रधान है। पहली श्रेणी के समाजों में जिन्होंने विकास के लक्ष्य को प्राप्त कर लिया है, औद्योगिक व आधुनिक हैं और दूसरी श्रेणी के समाज विकास की दौड़ में लगे हुए हैं लेकिन इन समाजों की अर्थव्यवस्था अब भी कृषि प्रधान है। इन समाजों में गरीबों की संख्या अधिक होती है।

समाजशास्त्री यह भी कहते हैं कि विकास की जो प्रक्रिया आज विकासशील देशों में चल रही हैं वह निश्चित रूप से उन्हीं रास्तों पर, जिन पर विकसित देश चले हैं, चलेंगी। यह भी सम्भव है कि विकासशील देशों को विकास की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप कई अन्य समस्याओं के साथ जूझना पड़े। हाँबहाउस ने उद्विकास के स्थान पर सामाजिक विकास की अवधारणा का प्रयोग किया है। इनके अनुसार सामाजिक विकास की चार मुख्य कसौटियाँ हैं। इन कसौटियों को वे विकास के लक्षण मानते हैं :

1. **मात्रा** : यानी संख्यात्मक रूप से समाज के विभिन्न क्षेत्रों में वृद्धि। हाँबहाउस विकास और वृद्धि (Growth) दोनों के समानार्थक समझते हैं।
2. **कुशलता** : इसमें उद्योग में कार्यरत लोग कुशल होते हैं। ऐसे समाज में बौद्धिकों और वैज्ञानिक विशेषज्ञों का योगदान बहुत अधिक होता है।
3. **पारस्परिकता** : विकास में प्रकार्यात्मकता होती है। यदि कम्प्यूटर विज्ञान में विकास होता है तो इसका प्रभाव उत्पादन, सूचना संचयन और औद्योगिक विकास पर पड़ता है।
4. **स्वतन्त्रता** : विकास समाजों को स्वतन्त्रता देता है। विकसित समाज एक सीमा पर पहुँच कर स्वायत्त समाज बन जाते हैं।

## प्रगति (Progress)

इस अवधारणा के साथ बड़ी दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति रही है। स्पेन्सर के समय से लेकर आज तक

समाजशास्त्रियों का यह प्रयास रहा है कि वे समाजशास्त्र को एक विज्ञान की तरह स्थापित कर सकें। इसी प्रयास में एक लम्बी अवधि तक समाजशास्त्री समाजशास्त्र को मूल्य मुक्त (Value Free) विज्ञान बनाने का प्रयास भी करते रहे हैं। मूल्य मुक्त विज्ञान की अवधारणा ने प्रगति की अवधारणा का एक तरह से बहिष्कार कर दिया है। इस भाँति समाजशास्त्र में प्रगति की अवधारणा एक उपेक्षित अवधारणा रही। समाजशास्त्र के पिछले इतिहास में प्रगति की अवधारणा का प्रयोग नहीं के बराबर हुआ है। ऐसा लगता है कि समाजशास्त्रियों ने प्रगति की अवधारणा को विकास की अवधारणा के साथ जोड़ दिया है। यहाँ हम सत्यमित्र दुबे एवं दिनेश शर्मा के कथन को देना प्रासंगिक समझते हैं :

प्रगति की अवधारणा पर स्पेन्सर और हाबहाउस ने विशेष रूप से विचार व्यक्त किया है। स्पेन्सर के चिन्तन में उद्विकास और प्रगति तथा हाबहाउस के लेखन में विकास और प्रगति की अवधारणाएँ मिली-जुली हैं। अतः इनका विशिष्ट अर्थ स्थूल नहीं होता है। “प्रगति के सिद्धान्त और कारण” पर प्रकाश डालते हुए स्पेन्सर का मत है कि पृथ्वी, जीवन, समाज, सरकार, वाणिज्य, भाषा, साहित्य तथा विज्ञान चाहे जिस क्षेत्र में भी हम प्रगति की धारणा पर विचार करें, वह सरल से जटिल, कम विशेषीकृत और सजातीय से विजातीय की ओर बढ़ने की उद्विकासीय सिद्धान्त का ही अंग है। “प्रगति के साथ नैतिक पक्ष भी जुड़े हैं।” हाबहाउस के अनुसार आर्थिक विकास और कुशलता के बीच नैतिक रूप से पतन सम्भव है। प्रगति की धारणा नैतिक उन्नति पर बल देती है। परमाणु ऊर्जा की खोज विकास का सूचक है लेकिन इसके साथ मानवीय विनाश की जो आशंका जुड़ी है, वह नैतिक पतन की सूचक है।

### सुधार (Reformation)

सामाजिक सुधार की अवधारणा वस्तुतः सामाजिक परिवर्तन का बोध देती है। यह भी एक सामाजिक प्रक्रिया है जो धीरे-धीरे सामाजिक परिवर्तन की ओर बढ़ती है। जब समाज की परम्परागत व्यवस्था को जान-बूझ कर परिवर्तित किया जाता है तो यह सुधार है। यूरोप के इतिहास में एक पूरी शताब्दी धार्मिक सुधारों की रही। ये सुधार 18-19वीं शताब्दी में हुए। कट्टर धर्मावलम्बी कैथोलिक धर्म किसी भी सुधार को स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं थे। इधर दूसरी ओर प्रोटेस्टेन्ट धर्मावलम्बी यह आन्दोलन उठाये हुए थे कि कैथोलिक धर्म अत्यधिक रूढ़िवादी था और समय के अनुसार उसे बदल जाना चाहिये। धर्म के नाम पर जो आडम्बर थे उनके खिलाफ यूरोप का यह सुधार आन्दोलन था। हमारे देश में भी सुधार मुद्दा बनाया गया। यह इसलिये कि विधवाओं का जीवन अपने आप में एक त्रासदी था। अछूतोद्धार के लिये भी आन्दोलन किये। इधर गाँधीजी ने सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया है।

### क्रान्ति (Revolution)

तीव्र गति से होने वाले परिवर्तन को क्रान्ति कहते हैं। जहाँ विकास में क्रमबद्ध और निरन्तर